International Referred Research Journal, October,2010.ISSN- 0974-2832VoL.II *ISSUE-21

शोध पत्र- इतिहास

ब्रिटि़श कालीन भारत में नारी की स्थिति

* कु. अंजना साह

October, 2010

* शोधछात्रा डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

fcfV'k dky d iwo Hkkjrh; ukjh

वैदिक समाज में नारी को ज्ञान, शक्ति और सम्पत्ति का प्रतीक माना जाता था। जिसके परिणामस्वरूप सरस्वती, दुर्गा और लक्ष्मी की पूजा की जाती है। नारी को समाज ने पुरूष की अर्द्धांगिनी स्वीकार किया है। वेदों के अनुसार किसी भी कर्तव्य की पूर्ति नारी होती है, ''नारी परिवार की नींव होती है,परिवार समुदाय का तथा समुदाय राष्ट्र की नींव है। इससे स्पष्ट होता है कि नारी ही राष्ट्र की नींव है।[1]शास्त्रों में कहा गया है कि जिस घर में नारी का यथोचित सम्मान होता है, वह घर स्वर्ग के समान है।इतना सब कुछ होते हुए भी व्यवहारिक रूप में भारत में नारी की स्थिति पुरूषों से सदैव ही निम्न रही है, यद्यपि विभिन्न कालों में उतार चढ़ाव आते रहे हैं। पुरातात्विक अवशेषों व वैदिक सहित्य से पूर्व वैदिक युग एवं ऋगवैदिक युग में नारी की स्थिति क्रमशः पुरूष के समान होने के संकेत मिलते हैं, किन्तु उत्तर वैदिक काल के पश्चात समाज की मौलिक व्यवस्थाओं द्वारा रूढ़ियों का रूप ग्रहण करने के फलस्वरूप नारी के अधिकार और सम्मान कम होते चले गए।

पुरूष नारी के अधिकारों का हनन एवं शोषण करता गया जिससे नारी की स्थिति में गिरावट आती गई। रूढ़ियों को धर्म के ठेकेदारों तथा स्मृतिकारों द्वारा सहयोग मिलने से नारी धीरे–धीरे परतंत्र, निस्सहाय और निर्बल बन गयी और इस प्रकार पुरूष द्वारा नारी के अधिकारों का हनन किया जाने लगा। उत्तर वैदिक युग में नारी अवनति का प्रवाह अधोदिशा की ओर निरंतर चलता रहा। मध्यकाल में भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति सर्वाधिक दयनीय थी। ब्राम्हणों ने हिन्दु धर्म की रक्षा, रक्त की शुद्धता तथा नारियों के सतीत्व को बनाए रखने के लिये नारी के संबंध में नियमों को और कठोर बना दिया। नारी शिक्षा प्रायः समाप्त हो गई, पर्दाप्रथा को प्रोत्साहन मिला तथा लड़कियों के विवाह की उम्र घटकर चार साल तक हो गई विधवा विवाह पूर्ण रूप से बंद हो गये तथा सती प्रथा चरम सीमा तक पहुंच गई।[2]

fcfV'k dky e ukjh

भारतीय समाज पश्चिमी समाज के संपर्क में 15 वीं सदी के अंत में वास्कोडिगामा नामक एक पुर्तगाली नाविक के कालीकट आने के पश्चात् ही आने लगा था किन्तु पुर्तगाली, डच व फ्रांसीसियों के बाद 17 वीं सदी में अंग्रेजों के भारत आगमन से विदेशी संपर्क अधिक बढ़ने लगा था। इस काल तक मुगल साम्राज्य का पतन हो गया था। ईस्ट इंडिया कंपनी केवल व्यापार के उद्देश्य से भारत आई थी, किन्तु भारत की बिगड़ी सामाजिक परिस्थिति का लाभ उठाते हुए धीरे–धीरे कंपनी ने संपूर्ण भारत में अपना शासन स्थापित कर लिया। इस काल में भारतीय नारी की स्थिति काफी शोचनीय थी। नारी का कोई अस्तित्व नहीं था अतः ब्रिट्रिश युग में नारी की स्थिति में विभिन्न उतार चढ़ाव आए।

lekt e ukjh dh fLFkfr

18 वीं शताब्दी में भारतीय समाज में नारियों की अवस्था विचारणीय थी। नारी को समाज पुरूषों की अपेक्षा निम्न समझता था इसीलिए नारी शिक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। लड़कियों का विवाह बहुत कम आयु में कर दिया जाता था एवं भारतीय समाज में सती प्रथा प्रचलित थी। सती होने से बच जाने वाली विधवा नारी को अपमानजनक जीवन व्यतीत करना पड़ता था। समाज नारी को पुर्नविवाह की अनुमति नहीं देता था। धनी पुरूष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह कर लेते थे जिस कारण नारी पर कई अत्याचार होते थे। लड़कियों के विवाह पर मां–बाप को बहुत साधन दहेज के रूप में देना पड़ता था जिस कारण लड़कियों को समाज बोझ समझता था। राजस्थान तथा कई अन्य प्रदेशों में तो कन्यावध की प्रथा भी प्रचलित थी।[3]

अतः हम कह सकते हैं, कि ब्रिटिश कालीन समाज में नारी की स्थिति दुखद थी। प्राचीन काल में नारी को जो सम्मान प्राप्त था, वह ब्रिट्रिश काल तक पूर्णतः विलुप्त हो गया। समाज में नारी के प्रति घोर उपेक्षा व्याप्त हो गयी। नारी को संपत्ति संबंधी अधिकार नहीं रहे। सती प्रथा, बहुपत्नि प्रथा, बाल विवाह और कन्या वध जैसी कुपरंपराओं ने नारी की दशा अत्यंत ही बिड़म्बनापूर्ण कर दी। बहुपत्नि प्रथा हिन्दुओं और मुसलमानों में उच्च और संपन्न वर्ग के लोगों में प्रचलित थी, बहुपत्नियां रखना समाज में सम्मान और संपन्नता का प्रतीक माना जाता था।

ukjh dh oSokfgd fLFkfr

कन्या का विवाह बोझ समझा जाता था एवं समाज कन्या का वैधत्य अशुभ और अमंगलकारी मानता था। इस कारण प्रायः जन्म के उपरांत ही कन्याओं की हत्या कर दी जाती थी। यदि कोई कन्या इस अमानवीय बर्बरता से बच जाती तो उसे अल्पायु में ही विवाह के बंधनों में जकड़ दिया जाता था। बाल विवाह के परिणामस्वरूप अनेक नारियों को वैधत्य जीवन की भीषण विडम्बनाओं को सहन करना पड़ता था। बंगाल में कुलीन ब्राम्हणों में बाल विवाह और बहुपत्नि प्रथा अत्याधिक प्रचलित थी। कभी–कभी एक कुलीन ब्राम्हण पुरूष 50 से 60 कन्याओं से विवाह कर लेता था।[4] ये विवाहित कन्यायें विवाह के बाद अपने पिता के घर जीवन भर रहती थीं और अपने पति का मुंह भी नहीं देख

पाती थीं। इसी तरह मुस्लिम समाज में नारी की स्थिति अत्यंत दुखद थी, बहुपत्नि, तलाक और पर्दा प्रथा ने उनकी दशा शोचनीय कर दी थी। बहुपत्नि प्रथा के इस युग में विवाह सामाजिक अपयश और लोकनिंदा से बचने का सरल तरीका था, पुरूष प्रथम पत्नि के होते हुए भी बहुविवाह कर सकता था, अनेक रखैलें रख सकता था किन्तु नारी का पुर्नर्विवाह नहीं हो सकता था निम्न श्रेणी की स्त्रियों को छोड़कर विधवाओं को या तो सती हो जाना पड़ता था, जिसे राजराममोहन राय ने शास्त्रों के अनुसार हत्या कहा है या तपस्वनी का जीवन, कष्ट और संकट से पूर्ण, अत्यन्त दुखद और दयनीय व्यतीत करना पड़ता था। 4, 5, 10 या 12 वर्ष की आयु में ही अबोध कन्या का विवाह किसी अज्ञात पुरूष से कर दिया जाता था। बंगाल में ब्राह्म्णों में बहुपत्नि रखने की घृणित व दूषित प्रथा प्रचलित थी। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं कि 80 वर्ष के बूढ़े ब्राह्म्ण की लगभग दो सौ पत्नियां थीं, जिनमें सबसे छोटी पत्नि की आयु 8 वर्ष थी एवं अन्य ब्राह्म्णों की दस से आठ पत्नियां तक होती थीं।[5] अनेक कन्याओं का विवाह एक साथ, एक समय में, एक ही पुरूष से हो जाता था, विवाह होने के उपरांत ये कन्याएं अपने पिता के घर जीवन भर रहती थीं एवं पिता के आगृह पर इनका पति इनके पास कभी–कभी ही आता था और पिता द्वारा पति के व्यय की पूर्ति की जाती थी तथा पति के निधन के पश्चात इन कन्याओं से आशा की जाती थी कि वे सती हो जाएं।[6]

ukjh dk ikfjokfjd thou

वैदिक काल की वह नारी जो परिवार की 'साम्राज्ञी' थी, इस युग में ससुराल की सेविका बनकर रह गई। परिवार में बच्चे पैदा करना एवं पति के संबंधियों की सेवा करना ही नारी का प्रमुख कर्तव्य माना जाने लगा। पारिवारिक और सामाजिक समस्त प्रथाओं एवं परम्पराओं, नियमों व कानून को सर्वप्रथम महिला पर ही लादा जाता था। दूसरी ओर नारी इन अत्याचारों को अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल मानकर इससे संतुष्ट रहती थी। ''हिन्दु परिवार में सबसे अधिक रूढ़िवादी तत्व महिला है और परम्परागत रूढ़ियों का पालन इनके द्वारा ही कराया जाता है।[7] नारी को न केवल संयुक्त परिवार की संपत्ति मे से हिस्सा देने से वंचित किया गया, अपितु पिता की संपत्ति पर भी नारी का कोई अधिकार नहीं था ''हिन्दु परिवार में पुत्री के अस्तित्व को कानून द्वारा हटा दिया गया, पत्नि पति के परिवार का अंग हो गई और विधवाओं को मृततुल्य मान लिया गया।[8] परिवार में नारी को संपत्ति संबंधी अधिकार प्रदान करके इसे सुरक्षित नहीं रखा जा सकता, इसीलिए यह जरूरी हो जाता है कि नारी को पारिवार में दबाकर रखा जाए।[9] इसके फलस्वरूप अनेक गाथाओं, धार्मिक उपदेशों का सहारा लेकर नारी को यह विश्वास दिलाया गया कि पुरूष चाहे कितना ही क्रोधी, कामी, दुराचारी और पापी क्यों न हो, उसको देवता मानकर पूजा करना नारी का परम धर्म है।[10]

ukjh dh 'k{kf.kd fLFkfr

प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा का खूब प्रचार था एवं मध्यकाल में भी इसका अस्तित्व विद्यमान था परंतु मुगल साम्राज्य के पतन के बाद 18 वीं सदी में नारी शिक्षा को किसी प्रकार का प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ। 19 वीं सदी के प्रारम्भ में शिक्षा की परंपरा या कोई व्यवस्था नहीं थी, केवल अभिजात कुलीन परिवारों में कन्याओं को सीमित शिक्षा दी जाती थी। इस काल में एक गलत धारणा प्रचलित हो गयी थी, कि हिन्दु शास्त्रों में नारी शिक्षा की अनुमति नहीं है, और कन्या को शिक्षा देने से वह विधवा हो जाती है।[11] पति पत्नि दोनों का शिक्षित होना अनिष्कारी माना जाता था, अतः नारी के स्तर में गिरावट का मूल तथ्य अशिक्षा ही थी, अशिक्षा के कारण नारी ने बिना किसी तर्क के पक्षपातपूर्ण धार्मिक विद्यानों को स्वीकार किया और अपने अधिकारों से वंचित रही।अशिक्षा के कारण नारी का जीवन स्तर परिवार तक सीमित हो गया। पति एवं परिवार द्वारा दिए गए धार्मिक उपदेश ही नारी की एकमात्र शिक्षा थी। थोड़ी बहुत शिक्षा जिस नारी ने प्राप्त की उसका उपयोग वे धर्मशास्त्र पढ़ने में ही करने लगी, क्योंकि सती नारी की कथाएं एवं पतिव्रता नरियों की कथाएं पढ़ना ही नैतिक धर्म माना जाता था। ये रूढ़िगत आदर्श माता द्वारा पुत्री को निरंतर हस्तांतरित होते चले गए। धर्म के वास्तविक रूप को नारी द्वारा कभी न समझ पाने का एक मात्र कारण उसकी अशिक्षा ही थी।[12]

ukjh m)kj e: lekt lq/kkjdksa dh Hkwfedk

स्त्रियों के प्रति तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों के प्रति उन्नीसवीं शताब्दी से एक नया दृष्टिकोण उभरा था। नारी की स्थिति सुधारने हेतु कार्य किए जाने लगे। भारत आधुनिकीकरण की दिशा में जब आगे बढ़ा तो स्वाभाविक रूप से राष्ट्रीय चेतना विकसित हुई। समाज का पुरातनपंथी रवैया बदलने लगा और विवेक के द्वारा सामाजिक संस्थाओं और रीति रिवाजों को परखा जाने लगा। विधवा विवाह और अंतर्जातीय विवाह आरम्भ हुए, जातिप्रथा की जकड़ भी ढीली होने लगी।[13] 19वीं सदी के समाज सुधार आंदोलनों के कारण जनमानस में स्त्री–स्वतंत्रता के लिये चेतना आई व नवीन संगठनों का गठन हुआ। 19वीं तथा 20वीं सदी में भारत में राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रानाडे, सरोजनी नायडू, महात्मा गांधी, एनीबीसेंट कमला देवी चट्टोपाध्याय, आदि समाज सुधारक हुए जिन्होंने नारी की दशा सुधारने के लिए प्रयत्न किए। प्रार्थना समाज ने जांत–पांत एवं बाल विवाह को समाप्त करने की कोशिश की एवं हिन्दु समाज में स्त्री शिक्षा के प्रसार एवं विधवा विवाह को प्रोत्साहित करने का भरसक प्रयत्न किया।[14] ब्रह्म समाज, आर्य समाज तथा सिंह सभा जैसी संस्थाओं ने भी समाज में नारी को उचित स्थान प्रदान करने का प्रचार किया एवं नारी संबंधित कुरीतियों पर गंभीरतापूर्वक आक्रमण किया। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह,पर्दाप्रथा आदि कुरीतियों का विरोध किया, आर्य समाज ने स्त्री शिक्षा और नारी उद्धार के लिये विभिन्न सफल प्रयत्न किए। दयानंद सरस्वती ने नारी शिक्षा हेतु कन्या गुरूकुलों की स्थापना की तथा डी.ए.बी विद्यालयों में लड़कियों के लिये आधुनिक शिक्षा का प्रबंध किया। स्वामी विवेकानंद के आध्यात्म के आधार पर महिला–पुरूष की समता पर बल दिया। महाराष्ट्र में स्थित प्रार्थना समाज ने विधवा विवाह

संघ तथा 'दक्षिण शिक्षा समिति' की स्थापना करके स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया।

राष्ट्रीय आंदोलन और महात्मा गांधी का भी नारी की उन्नति में विशेष योगदान रहा। गांधी जी ने नारी को आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिये प्रेरित किया और भारतीय नारी ने प्रथम बार अपने घर से बाहर निकल कर जुलूसों, प्रदर्शनों और जन सभाओं में भाग लिया।[15]

ukjh m)kj eas fcfV'k 'kklu dk ;kxnku

20 वीं सदी में स्त्रियों ने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के साथ–साथ अपनी पूर्ण स्वतंत्रता व समानता के लिये नारी आंदोलन चलाया व स्वतंत्र संगठन बनाये। ब्रिटिश शासन द्वारा स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के प्रयत्न किये गये। सन् 1829 ई. में लॉर्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर दिया। सन् 1856 ई. में 'विधवा विवाह कानून' द्वारा भारतीय विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार प्रदान किया गया। सन् 1872 ई. में केशवचंद्र सेन के प्रयत्नों से सिविल मैरिज अधिनियम बनाया गया, जिसके अंतर्गत अंतर्जातीय विवाह को वैध स्वीकार किया गया।

सन् 1874 ई. में विवाहित पत्नी संपत्ति अधिनियम एवं सन् 1929 ई. में बाल विवाह अवरोधक अधिनियम बना। सन् 1930 ई. में 'शारदा कानून' के द्वारा विवाह हेतु लड़के की आयु कम से कम 18 वर्ष और लड़की की 14 वर्ष निश्चत कर दी गई। सन् 1935 ई. में भारतीय सरकार अधिनियम आदि सामाजिक विधानों द्वारा भारतीय स्त्रियों की स्थिति को ऊंचा उठाने के प्रयास किये गये।[16]सन् 1937 ई. में हिन्दू नारी को संपत्ति की अधिकारिणी होने का अधिकार दिया गया। सन् 1943 ई. में कार्यरत महिलाओं को बच्चे के जन्म के अवसर पर अवकाश देने की व्यवस्था की गयी।[7]

fu"d"k

उपरोक्त अध्ययन से प्रतीत होता है, कि ब्रिट्रिश युग में भारतीय स्त्रियों की स्थिति में बहुत परिवर्तन आये व उनके जीवन के सभी पक्षों में उन्नति हुई किंतु इन सब सुविधाओं का लाभ शहरी, उच्च वर्ग की स्त्रियां ही सीमित मात्रा में उठा पायीं। आम भारतीय स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं राजनीतिक निर्योग्ताएं विशेष कर ग्रामीण क्षेत्रों में स्वतंत्रता प्राप्ति तक भी कम नहीं हो पायी थी।[18] किंतु इतना अवश्य हुआ कि इस समय तक पूरे देश के लोगों ने स्त्रियों से संबंधित विषयों पर एक नये दृष्टिकोण के साथ विचार करना प्रारम्भ कर दिया था जो स्वयं अपने आप में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। यद्यपि ब्रिट्रिश काल में स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के लिये बहुमुखी प्रयत्न हुए जिसके कारण आधुनिक काल में तुलनात्मक दृष्टि से भारतीय स्त्रियों की स्थिति पहले से पर्याप्त ठीक है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता है कि नारी से संबंधित सामाजिक कुरीतियां पूर्णतया समाप्त हो गयी हैं अथवा भारतीय समाज ने स्त्री और पुरूष की समता को स्वीकर कर लिया है, परंतु यह अवश्य है कि इस संबंध में सर्वमान्य जागृति है और धीरे–धीरे स्त्री को भारतीय समाज में सम्मानित स्थान प्रदान किये जाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

परंतु अब भी इसे उचित स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि अभी भी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में देवदासी प्रथा,विधवा विवाह में संकोच, बाल विवाह, दहेज प्रथा और पर्दा प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियां विद्यमान हैं। स्त्री शिक्षा आज भी अपर्याप्त है। वस्तुतः भारत में नारी सुधार के जो भी प्रयत्न किये गये हैं वे स्त्री पुरूष को समानता प्रदान करने की दृष्टि से नहीं हैं अपितु स्त्रियों के प्रति सामाजिक अत्याचारों को हटाने मात्र के दृष्टिकोण से किये गये हैं। ऐसी स्थिति में स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त होना संभव नहीं है।ऐसी स्थिति में अनेक सामाजिक परम्पराओं और जीवन की मान्यताओं में परिवर्तन लाना आवश्यक होगा और नारी एवं पुरूष के लिये समान नैतिक नियम, समान सामाजिक व्यवहार, समान कर्तव्य, अधिकार तथा उत्तरदायित्व तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में समान कानूनी संरक्षण प्रदान करना आवश्यक होगा तभी स्त्री पुरूषों में समानता संभव होगी और एक संतुलित समाज का निर्माण होगा जो आधुनिक भारत की एक अनिवार्य आवश्यकता है किन्तु अभी हम इस लक्ष्य से दूर हैं जो के चिन्ता एवं मंथन का विषय है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सिंह, राजबाला, मधुबाला : भारत में महिलाएं, जयपुर, 2006 पृ. 1 2. मिश्रा, सरस्वती : भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति, दिल्ली, 1996 पृ.16 3. मित्तल, एम.के.: आधुनिक भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, आगरा पृ. 309 4.लूनिया, बी.एन. : आधुनिक भारत का जनजीवन और संस्कृति, इंदौर, 1993, पृ. 41 5. लूनिया, बी.एन.: आधुनिक भारत का जनजीवन और संस्कृति, इंदौर, 1993, पृ. 41 6. लूनिया, बी.एन.:आधुनिक भारत का जनजीवन और संस्कृति, इंदौर, 1993, पृ. 41 7. मजूमदार, डी.एन. : रेस ऑफ कल्चर ऑफ इंडिया, 1958, पृ. 251 8.पन्निकर, के.एम.: हिन्दू सोसायटी ऑफ क्रांसरोड, पृ. 36 9.मजूमदार, डी.एन. : रेस ऑफ कल्चर ऑफ इंडिया, 1958, पृ.252 10. सिंह, राजबाला, मधुबाला: भारत में महिलाएं, जयपुर, 2006 पृ 7 11. लूनिया, बी.एन. : आधुनिक भारत का जनजीवन और संस्कृति, इंदौर, 1993, पृ.141 12. सिंह, राजबाला, मधुबाला :भारत में महिलाएं, जयपुर, 2006 पृ. 6 13. मिश्र, डॉ. जगन्नाथ प्रसाद : आधुनिक भारत का इतिहास, लखनऊ, 1983, पृ. 658 14. फर्कुहर, जे.एम. : मॉडर्न मूवमेन्टस इन इंडिया, पृ. 70–80 15. शर्मा, एल.पी. : आधुनिक भारतीय संस्कृति, 1996, पृ. 174 16. शर्मा, एल.पी. : आधुनिक भारतीय संस्कृति, 1996, पृ. 174 17. सिंह, राजबाला, मधुबाला : भारत में महिलाएं, जयपुर, 2006, पृ.19–20